‘कला और साहित्य के केंद्र में जीवन होना चाहिए’ (हिंदी साहित्यकार ⊠ चिंतक प्रेमकुमार मणि से प्रमोद रंजन की बातचीत)

Pramod Ranjan, Premkumar Mani

▶ To cite this version:

Pramod Ranjan, Premkumar Mani. ‘कला और साहित्य के केंद्र में जीवन होना चाहिए’ (हिंदी साहित्यकार ⊠ चिंतक प्रेमकुमार मणि से प्रमोद रंजन की बातचीत). 2022, ⟨10.17613/nsnz-9w79⟩. ⟨hal-03873703⟩

HAL Id: hal-03873703

https://hal.science/hal-03873703

Submitted on 27 Nov 2022

HAL is a multi-disciplinary open access archive for the deposit and dissemination of scientific research documents, whether they are published or not. The documents may come from teaching and research institutions in France or abroad, or from public or private research centers.

L’archive ouverte pluridisciplinaire **HAL**, est destinée au dépôt et à la diffusion de documents scientifiques de niveau recherche, publiés ou non, émanant des établissements d’enseignement et de recherche français ou étrangers, des laboratoires publics ou privés.

Distributed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License

‘कला और साहित्य के केंद्र में जीवन होना चाहिए’

(प्रेमकुमार मणि से प्रमोद रंजन की बातचीत)

हिंदी साहित्यकार व चिंतक प्रेमकुमार मणि अपनी उत्कृष्ट कहानियों और वैचारिक लेखों के लिए जाने जाते हैं। उनके पांच कहानी-संकलन, एक उपन्यास और लेखों के कई संकलन प्रकाशित हैं। ‘अकथ कहानी’ शीर्षक से उनकी आत्मकथा शीघ्र प्रकाश्य है। इस बातचीत में प्रेमकुमार मणि के जीवन के कई पहलु पहली बार पाठकों के सामने आए हैं।

प्रमोद रंजन: आपका उपन्यास ‘ढलान’ में उत्तर भारत की समाजिक बुनावट और राजनीति के उतार-चढ़ावों सूक्ष्मता से रेखांकित करता है। यह न सिर्फ साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण उपन्यास है, बल्कि हम इसमें भारत के प्रथम आम चुनाव से दूसरे आम चुनाव के बीच के उथल-पुथल भरे कालखंड (1955 से 1960) का राजनैतिक-इतिहास भी पाते हैं। इस उपन्यास को पढ़ते हुए पाठक काे महसूस होता है कि इसके अनेक पात्र लेखक के निजी जीवन से जुड़े हुए हैं। इस उपन्यास

की रचना प्रक्रिया और इसके पात्रों के बारे में कुछ बताएं।

प्रेमकुमार मणि: आप के इस कथन में कुछ सच्चाई है कि 'ढलान' उपन्यास में मेरे जीवन या घर-परिवार की कुछ छवियां हैं. लेखक के लिए यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि वह अपने यथार्थ को चित्रित करे. मैं समझता हूँ कि उपन्यास में लेखक का जीवन और उसका यथार्थ किसी न किसी रूप में प्रकट होता है, अपने अंदाज में उभरता है. ढलान में भी यह हुआ है. मैं इस पर अधिक नहीं कहूंगा, क्योंकि यह मेरा काम नहीं होना चाहिए. इसे पाठकों को ढूँढना चाहिए. अज्ञेय जी कहते थे, किसी रचनाकार को आत्मकथा नहीं लिखनी चाहिए, क्योंकि कोई लेखक-रचनाकार एक उपन्यास में जितना सत्य अपने बारे में उद्घाटित करेगा, उतना आत्मकथा में नहीं करेगा. उपन्यास में सच अधिक मुखर होगा, आत्मकथा में झूठ के मुखर होने की संभावना अधिक होगी. आप देखेंगे कि तुलसीदास की चर्चित कृति रामचरितमानस में राम से अधिक तुलसी का व्यक्तिगत दुःख उभरा है. तुलसी के राम अयोध्या में कभी सुखी नहीं रहे. उनका जीवन जंगल में अधिक सुखमय था. अरण्य कांड का अभिराम सौंदर्य यूँ ही नहीं निखरा है. पूरा मानस तुलसी और रत्ना की कहानी है. उसे ही यह महाकाव्य सम्बोधित है. देखो रत्ना, तुमने तो मुझ दरिद्र कथावाचक का घर त्याग दिया, अपने मायके की लंका चली गई. जहाँ भौतिक सुखों की भरमार है. लेकिन क्या तुम सचमुच सुखी हो? अपुन के राम तो

वनवासी हैं, पर्णकुटी में अपनी सीता के साथ सुख से जी रहे हैं. यह है रामचरितमानस का रहस्य. वहां तुलसी छुपे बैठे हैं. पहचानने वाले पहचान लेते हैं. इसलिए मैं कहूंगा लेखक से नहीं पूछा जाना चाहिए कि इसमें आप कहाँ हो, पाठक-आलोचक इसे ढूंढे, बतलाए. फणीश्वरनाथ रेणु से एकबार पूछा गया था मैला आँचल में आप कहाँ हैं? रेणु का जवाब था आज़ादी के जश्न का जुलूस निकला हुआ है और एक आदमी जोर से नारा लगाता है '*यह आज़ादी झूठी है*'. बालदेव जी कहते हैं यह हिंगना औराही का सोटलिट (सोशलिस्ट) है. हिंगना औराही का यह सोटलिट और कोई नहीं रेणु हैं, जो कथावाचक हैं. तो हर रचना में लेखक किसी न किसी रूप में मौजूद होता है. यदि नहीं है तब वह गढ़ी हुई रचना मानी जानी चाहिए. तोलस्तोय के रिसरेक्शन में नेख्लुदोव के रूप में कोई भी लेखक को पहचान सकता है, या अज्ञेय के शेखर एक जीवनी में शेखर स्वयं लेखक है. अपने उपन्यास ढलान की बात करूँ तो मैं अत्यंत निष्क्रिय रूप में हूँ. नवराज के रूप में. इससे अधिक क्या कहूं!

प्रमोद रंजन: हमारी पीढ़ी के लोग आपकी वैचारिक दुनिया से आपके लेखन के माध्यम से परिचित रहे हैं, लेकिन आपकी निजी जीवन के बारे में हम बहुत कम जानते हैं। क्या आप पाठकों के लिए अपने जन्म, परिवार और बचपन की

स्मृतियों को साझा करना चाहेंगे?

प्रेमकुमार मणि: मेरा जन्म 25 जुलाई 1953 को ननिहाल में हुआ, जो पटना जिले के एक गांव में है. जैसा कि माँ ने बताया है, शनिवार दिन था. हिंदुस्तानी कैलेंडर के अनुसार सावन शुक्लपक्ष की कोई तारीख. सूर्योदय के साथ मेरा जन्म हुआ. मैं कोई बड़े खानदान का नहीं था, यानी मेरे दादा और नाना के परिवार की कोई खास पृष्ठभूमि नहीं थी. दादा के तरफ से किसान और नाना के तरफ से दस्तकार परिवार की सामान्य पृष्ठभूमि थी. दादा छोटे किसान थे, जो सुबह से शाम तक घर -गृहस्ती में व्यस्त होते थे और नाना पेशे से ग्रामीण आर्किटेक्ट, जिन्हें राजमिस्त्री कहा जाता था. लेकिन वह कुछ खास थे, क्योंकि उन्हें बहुमंजली इमारतें बनवाने, मंदिर बनवाने और इसी तरह के अन्य कारीगरी के काम करवाने में महारत हासिल थी. उन दिनों जमींदार और कुछ बड़े लोग ही ऐसी इमारतें बनवा सकते थे, इसलिए वह दूर -दूर तक बुलवाए जाते थे. उन्हें पारिश्रमिक भी अच्छा मिलता था. आर्थिक, और सांस्कृतिक तौर से भी, मेरे नाना का परिवार दादा के परिवार से कहीं अधिक समृद्ध था. माँ के पास जड़ी, यानी सोने -चांदी के महीन तारों से कसीदे की हुई कुछ साड़ियां थीं,जिन्हें मैंने बचपन में देखा था. बाद के दिनों में आर्थिक तंगी में माँ के गहनों के साथ वे साड़ियां भी बिक गईं. चांदी

का बना एक बड़ा -सा मयूर हमारे घर था ,जो मेरे हाई स्कूल पहुंचने के बाद ही कभी बिका.

नाना और मेरे दादा दोनों ने कैथी लिपि के माध्यम से दर्जा पांच तक की शिक्षा पाई थी. लेकिन दोनों कुल मिला कर धर्म-परायण व्यक्ति थे. नाना- घर से कुछ कारणों से हमारा सम्बन्ध हमेशा केलिए विच्छेद हो गया ,क्योंकि मेरे माता -पिता ने सामाजिक नियमों की अवहेलना कर विवाह किया था, जिसे उन दिनों प्रेम-विवाह कहा जाता था. दादा के घर भी कभी -कभार ही जाना होता था, क्योंकि मेरी माँ शिक्षिका हो चुकी थीं और उनकी नियुक्ति पटना जिले के एक गाँव नौबतपुर में हुई, जो पटना नगर से कोई पचीस किलोमीटर की दूरी पर था. इसी नौबतपुर में मेरा बचपन बीता, यहीं स्कूली पढ़ाई हुई. मेरी जो भी स्मृतियाँ हैं इसी गाँव की हैं. सम्बन्धियों के सामाजिक वहिष्कार ने मेरे बचपन को एकाकी अवश्य बनाया किन्तु आज सोचता हूँ, उससे मुझे लाभ अधिक मिला.

मेरे पिता मिजाज से स्वप्नजीवी थे. मैट्रिक की परीक्षा में उन्होंने न केवल प्रथम श्रेणी बल्कि कुछ अधिक उल्लेखनीय सफलता हासिल की थी, इसलिए उनका जिले भर में नाम हुआ था. वह सामाजिक रूप से भी जागरूक थे. उन दिनों देश में आज़ादी का आंदोलन चल रहा था. इसमें नई प्रवृत्तियां और सरोकार जुड़ रहे थे.

मेरे सूबे में समाजवादी आंदोलन घनीभूत हो रहा था. स्वामी सहजानंद सरस्वती के नेतृत्व में बिहार में किसान आंदोलन बहुत तेज था. रैयत किसानों ने ज़मींदारों के खिलाफ निर्णायक लड़ाई छेड़ दी थी और यह आज़ादी के आंदोलन का हिस्सा बन गया था. इन्ही दिनों स्वामी जी मेरे दादा से मिले और मेरे पिता को किसान आंदोलन में साथ देने केलिए मांग लिया. उनके नेतृत्व में मेरे पिता 1940 में रामगढ में हुए समझौता विरोधी कॉन्फ्रेंस में शामिल हुए. आगे स्वतंत्रता संग्राम में वह जेल गए और पढाई हमेशा केलिए छूट गई. उसके बाद से वह राजनीतिक कार्यकर्त्ता बन कर रह गए. सुभाष बोस के फॉरवर्ड-ब्लॉक से वह जुड़े और आज़ादी के बहुत बाद कांग्रेस में शामिल हुए.

पिता को साहित्य से भी बहुत जुड़ाव था. हिंदी ,अंग्रेजी और उर्दू का उन्हें अच्छा ज्ञान था. कभी -कभार कविताएं भी करते थे. दो नाटक भी लिखे. दुनिया भर का साहित्य वह पढ़ते रहते थे. माँ को भी पढ़ने में खूब दिलचस्पी थी. हम गाँव में रहे ,लेकिन घर में धर्मयुग, हिंदुस्तान, दिनमान जैसी पत्रिकाएं नियमित आती रहती थीं. पिताजी को रोटी से अधिक किताबों की चिंता रहती थी. नौबतपुर सामाजिक-राजनीतिक तौर पर बहुत जाग्रत इलाका था. यहाँ के सामाजिक जीवन में मेरे माता-पिता ने गहरी पैठ जमा ली थी और इसके फलस्वरूप उन्हें विशिष्ट सम्मान भी प्राप्त था. अनेक छोटी-बड़ी संस्थाओं के निर्माण में उनकी भूमिका रही, खास

कर शैक्षणिक संस्थाओं के निर्माण में. याद कर सकता हूँ, घर में प्रायः लोग आते रहते थे और कुल मिला कर किसी आश्रम जैसा वातावरण हमारे इर्द-गिर्द बना होता था. राजनीतिक -सामाजिक और साहित्यिक चर्चा होती रहती थी. इन सबसे बहुत कुछ जान सका. इस तरह यह घर हमारी पहली पाठशाला थी. यहीं मैंने जाना कि कोई इंसान बड़ा -छोटा नहीं होता. जात-पात और दूसरी संकीर्णताओं केलिए मेरे घर में कोई जगह नहीं थी.

प्रमोद रंजन: और, आपकी आरम्भिक पढाई के बारे में कुछ?

प्रेमकुमार मणि: जैसा कि बतलाया मेरी पहली पाठशाला तो मेरा घर ही रहा. माँ शिक्षिका थीं अतएव अक्षर ज्ञान जैसी चीजें यहीं हो गई थीं. लेकिन जैसा कि माँ बतलाती रही हैं, बचपन में मैं शरारती था (हालांकि लोगों के अनुसार आज भी कम नहीं हूँ), इसलिए मुझे एक ऐसे स्कूल में भेजा गया जहाँ के शिक्षक बच्चों को पढ़ाने से अधिक पीटते थे. वहां मुझे दुरुस्त करने के लिए भेजा गया था. पिताजी के हस्तक्षेप से कुछ ही रोज बाद मुझे वहां से हटा लिया गया. लेकिन वहां का भय मैं आज भी नहीं भूला हूँ. हाई स्कूल में मैं एक बेहतर छात्र रहा. गणित के अलावे सभी विषयों पर मेरी पकड़ अच्छी थी. किन्तु मैं पाठ्यक्रम यानी सिलेबस से बाहर की किताबें प्रायः पढता रहता था. हाई स्कूल का पुस्तकालय समृद्ध था. वहां से

लेकर वाल्मीकिकृत रामायण और महाभारत के सभी खंड पढ़ गया था. गाँव में भी एक पुस्तकालय था. वहां की भी ज्यादातर किताबें पढ़ गया था. हालांकि वहां बहुत किताबें नहीं थी. लेकिन राहुल सांकृत्यायन और यशपाल की कई किताबें इन्ही पुस्तकालयों से लेकर पढ़ी. ' साम्यवाद ही क्यों', ' तुम्हारी क्षय', ' रामराज और मार्क्सवाद', 'सिंहावलोकन' , 'चक्कर क्लब' जैसी किताबें यहीं से पढ़ीं.

कॉलेज में बॉटनी, जूलॉजी और केमेस्ट्री मेरे विषय थे, जिनके साथ मैंने स्नातक

की डिग्री ली. नालंदा में अपने गुरु भिक्षु जगदीश कश्यप के सान्निध्य में रह कर पाली भाषा और बौद्ध धर्मदर्शन का अनौपचारिक अध्ययन भी किया. औपचारिक शिक्षा का सिलसिला टूट गया और फिर मैंने जो भी सीखा-समझा केवल स्वाध्याय से.

प्रमोद रंजन: आपने शिक्षा विज्ञान विषय में ली, फिर साहित्य-लेखन की ओर कैसे आए?

प्रेमकुमार मणि: जिस हाई स्कूल में पढ़ा, वहां से एक वार्षिक पत्रिका निकलती थी. नौवें दर्जे में था तब मैंने भी उसमें एक लेख लिखा और छपा. वह कार्ल मार्क्स की जीवनी थी. यह मेरा पहला प्रकाशित लेख था. स्थनीय कम्युनिस्ट नेताओं की इस पर नजर पडी. वे लोग मुझ से मिले. मार्क्सवाद से मैं सचमुच प्रभावित था. कम्युनिस्ट पार्टी की नौजवान सभा से मैं जुड़ गया और जैसे ही अठारह की उम्र हुई मुझे पार्टी सदस्य बना लिया गया. जिस रोज मुझे सदस्य बनाया गया अंचल कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यालय में मेरे स्वागत में एक छोटी-सी चाय पार्टी आयोजित हुई. यह शायद इसलिए कि मैं एक कांग्रेसी नेता का पुत्र था. लेकिन यह हुआ और जीवन में मेरा यह पहला सार्वजानिक अभिनन्दन था. हाई स्कूल के आख़िरी दिनों में ही मैंने मनुस्मृति पर एक छोटी-सी आलोचनात्मक पुस्तिका लिखी. जब अपने गुरु कश्यप जी को इसे दिखाया तब उन्होंने इसकी छोटी-सी भूमिका लिखी और

इसे छपने के लिए लखनऊ के बहुजन कल्याण प्रकाशन के पास भेजा, जिसके संचालक चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु थे. 1973 में यह किताब वहां से प्रकाशित हुई. इस तरह मैं लेखक बन गया.

उन दिनों दिनमान साप्ताहिक का प्रकाशन होता था जो एक विशिष्ट किस्म का हिंदी समाचार साप्ताहिक था. इसे अज्ञेय जी ने शुरू किया था और मेरे आँख खोलने तक कवि रघुवीर सहाय इसके संपादक थे. इस पत्रिका में मेरी कुछ टिप्पणियां प्रकाशित हुई, जिसके माध्यम से मुझे थोड़ी पहचान मिली.

1970 का दशक राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुत जागरूक था. वियतनाम में अमेरिकी साम्राज्यवाद के खिलाफ निर्णायक संघर्ष चल रहा था. साल्वाडोर अलेंदे चिली में आखिरी संघर्ष कर रहे थे. कुछ ही समय पहले 1967 में फ़्रांस में लेखक-चिंतक ज्यां पाल सात्र छात्र नौजवानों के संघर्ष में कूद पड़े थे. अपने भारत के गुजरात में छात्र-नौजवान 1973 में आंदोलन करने लगे और पुराने समाजवादी नेता जयप्रकाश नारायण ने उनके समर्थन में एक खुला खत जारी किया- 'युथ फॉर डेमोक्रेसी' शीर्षक से. साल भर बाद बिहार में छात्र नौजवानों का आंदोलन शुरू हो गया, जिसे बाद में जयप्रकाश आंदोलन के नाम से जाना गया. इस आंदोलन पर भी मैंने एक पुस्तिका लिखी ,जिसका कुछ अंश दिनमान और जवाहरलाल नेहरू

विश्वविद्यालय से निकलने वाली एक त्रैमासिक फिलॉसोफी एंड सोशल एक्शन में प्रकाशित हुआ.

लेखक रूप में कथाकार या कवि बनने के बारे में मैंने कभी नहीं सोचा था. लेखन को सामाजिक परिवर्तन का हिस्सा होना चाहिए मेरी सोच इतनी ही थी. 1975 के ही लगभग फणीश्वरनाथ रेणु, नागार्जुन ,कमलेश्वर, मधुकर सिंह जैसे लेखकों से संपर्क हुआ और मैं कथालेखन की ओर प्रवृत्त हुआ. मेरी कहानियां 'सारिका', 'धर्मयुग' जैसी साहित्यिक पत्रिकाओं में छपने लगी. इस तरह मैं कथा लेखक बन गया. किन्तु मेरे सोच की पार्श्व भूमि में हमेशा सामाजिक-राजनीतिक प्रश्न रहे हैं, इसलिए मेरे लेखन का केंद्रीय विषय भी वही रहा है. कला के लिए कला के फलसफे को मैं अमान्य करता हूँ. कला के केंद्र में अनिवार्य रूप से जीवन होगा या होना चाहिए. इसके बिना पर कला एक सरदर्द के अलावे और कुछ नहीं है. साहित्य भाषा की जादूगरी या चतुराई नहीं है. उसमे हमारा जीवन कितना है, उसकी धड़कन कितनी है यह तो देखना ही होगा. मेरी कोशिश यही होती है कि जीवन से कला और साहित्य के संबंध को बनाए रख सकूं. कुल मिला कर यही साहित्य संबंधी मेरे विचार हैं.

प्रमोद रंजन: किन दार्शनिकों, विचारकों और लेखकों को आप अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं? वस्तुत: हमारी जिज्ञासा यह है कि उनके किन विचारों से आप स्वयं को प्रभावित महसूस करते हैं?

प्रेमकुमार मणि: आप किन विचारों और किन व्यक्तित्वों से प्रभावित हुए हैं, यह तय कर पाना बहुत मुश्किल है. वास्तविकता यह होती है कि कोई इंसान अनेक चीजों से प्रभावित होता है. आपके व्यक्तित्व में, आपके विचारों में कई व्यक्तित्वों और विचारों की परछाई होती है. यह केवल मेरे या आपके साथ नहीं, किसी के साथ भी हो सकता है. उदाहरण के लिए बुद्ध ,कबीर, मार्क्स, गाँधी किसी को भी रख लीजिए. बुद्ध पर उनके पूर्ववर्ती चिंतन का प्रभाव है. उपनिषदों का चिंतन हो या फिर मक्खलि गोशाल या उनकी तरह के अनेक लोगों का. मार्क्स स्वयं जर्मन विचारधारा की लम्बी परंपरा के एक मुकाम पर हुए और कहा कि उन्होंने तो बस हेगेल के माथे के बल खड़े द्वंद्ववाद को पैर के बल खड़ा कर दिया है. उन्होंने हेगेल के आईडिया केंद्रित द्वंद्ववाद को मैटर-केंद्रित कर दिया था. मार्क्स के सामाजिक-राजनीतिक विचारों पर इंग्लैंड के संसदीय विकास, अमेरिकी स्वतंत्रता संघर्ष और फ्रांसीसी क्रांति का प्रभाव था; अथवा उनके विचार इन घटनाओं की निष्पत्ति थे. उन पर डार्विन का भी प्रभाव था. रूसी किसानों के एक नेता ने जब उनसे पत्र-व्यवहार किया तब जीवन के आखिरी दिनों में उनके विचार प्रभावित हुए

कि केवल मजदूर वर्ग ही नहीं, किन्ही स्थितियों में किसान भी क्रांति कर सकते हैं. कुछ ऐसी ही मनोदशा गांधी के साथ भी थी. 1910 के हिन्दस्वराज वाले गांधी 1920 और 1930 में नहीं थे. राउंड टेबल कॉन्फ्रेंस में आम्बेडकर से भिड़ने के बाद गांधी के जाति-विषयक विचार बहुत कुछ बदल चुके थे. इसे स्वयं आम्बेडकर ने अपने एक लेख में रेखांकित किया है. जवाहरलाल , सुभाष, भगत सिंह सबने गांधी को कुछ न कुछ प्रभावित किया. 1940 के बाद गांधी उसके पहले के गांधी से भिन्न हो चुके थे. प्रथम विश्वयुद्ध में उलझे हुए ब्रिटेन को उन्होंने यह कह कर परेशान करने से इंकार कर दिया था कि शत्रु भी जब संकट में हो तो उसे तंग नहीं करना चाहिए ,यही हमारी नैतिकता है. इसी आधार पर उन्होंने तिलक और एनीबेसेन्ट के होम रूल आंदोलन से किनारा कर लिया था. लेकिन ब्रिटेन प्रथम विश्वयुद्ध से भी अधिक दूसरे विश्वयुद्ध में परेशान-हाल था. बर्मा, सिंगापुर आदि में जब एक-एक कर ब्रिटिश सेना जापानी सेना के समक्ष सरेंडर कर रही थी, वैसे में ही 1942 में गांधी ने भारत छोडो आंदोलन छेड़ दिया था. यह गांधी का रणनीतिक बदलाव था. इस पर किन मनोदशाओं का प्रभाव था, इस पर विश्लेषण के बाद ही कुछ कहा जा सकता है. कहने का अर्थ यह कि हजारों अथवा असंख्य छोटी -बड़ी घटनाएं और विचार आपको प्रभावित करते हैं. कुछ को आप देख पाते हैं, उनका स्पष्ट अनुभव करते हैं. आपको प्रभावित करने वाले अनेक ऐसे अवचेतन साधन होते हैं ,जिन्हें मुश्किल से पहचाना जाता है और कभी तो इसे पहचानने में सदियाँ

लग जाती हैं. हमारे देश में अभी गांधी का ही संतुलित मूल्यांकन नहीं हुआ है. आम्बेडकर, जवाहरलाल आदि ने उनके मूल्यांकन की थोड़ी कोशिश की तो भक्तों के द्वारा कोहराम खड़ा कर दिया गया. ऐसा ही होता है. गांधी विमर्श के विषय अभी तक नहीं बने हैं. उनकी केवल वंदना हो रही है. इसी तरह दस-बीस साल और वंदना होती रही तो वह वैचारिक स्तर पर मर जाएंगे. अभी मैं देख रहा हूँ नेहरू का एक कोने से काफी विरोध हो रहा है. इस विरोध ने नेहरू को प्रासंगिक बना दिया है. लोग नेहरू को पढ़ने लगे हैं. इसलिए आलोचक बड़े काम के होते हैं. कबीर ने निंदक को नजदीक रखने की सलाह यूँ ही नहीं दी थी. लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं कि मैं हर ऐरू-गैरु की आलोचना को इस घेरे में ला रहा हूँ. अपराधियों की हम आलोचना नहीं करते,प्रतिरोध करते हैं. प्रतिरोध और आलोचना में फर्क होता है.

आपके इस प्रश्न का जवाब देना मेरा लिए मुश्किल है कि मैं किन लोगों से प्रभावित हूँ. मुझ पर पिता के विचारों का असर है, तो उन लगभग अनपढ़ दादा के भी विचारों का,जो मानते थे कि अंग्रेजों का आना इस देश केलिए बहुत अच्छा हुआ. आरम्भ में मुझे उनकी बातें हास्यास्पद लगी; लेकिन जब कार्ल मार्क्स के भारत संबंधी विचारों को पढ़ा, जिनमें उन्होंने अंग्रेजों के भारत आगमन को इतिहास का अवचेतन साधन माना है,तो मुझे अपने दादा जी का स्मरण हुआ.

अपने नतीजे में दोनों एक थे. इसे आप क्या कहेंगे? मैं बुद्ध से प्रभावित हूँ और मार्क्स से भी. मक्खलि गोशाल की कुछ बातें पसंद आती हैं तो जैन दर्शन का अनेकांतवाद भी मुझे पसंद है. मैं आज जो हूँ, कल वही रहूँगा, नहीं जानता. मैं किसी भी वैचारिक खूंटे, यहाँ तक कि अपनी ही मान्यताओं से बंधा नहीं रहना चाहता हूँ. बुद्ध, मार्क्स और मेरे गुरु ने यही मुझे सिखाया है. अपनी विवेक बुद्धि के अलावे किसी पर मैं भरोसा करना नहीं चाहूंगा. बौद्ध दर्शन के मूल में प्रतीत्यसमुत्पाद है, जो यह स्वीकार करता है कि हर चीज़ हर क्षण बदल रही है और यह एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है. विचार भी इससे बाहर नहीं है. बौद्धों के बीच हर ज़माने केलिए अलग-अलग बोधिसत्वों की कल्पना की गई है तो उसके पीछे यही भाव है. एक ज़माने का बोधिसत्व आने वाले ज़माने के लिए अप्रासंगिक हो सकता है.

प्रमोद रंजन: आप राजनीति कर्म से भी जुड़े रहे, इसलिए हम यह भी जानना चाहेंगे कि किन राजनीतिकर्मियों को आप महत्वपूर्ण मानते हैं, विशेषतौर पर उनके किन विचारों को?

प्रेमकुमार मणि: दार्शनिकों और विचारकों में से अनेक हैं,जिनसे मैं किन्ही अर्थों में प्रभावित हुआ अनुभव करता हूँ, किन्तु भारतीय राजनीति का कोई नेता ऐसा नहीं

है, जिनपर मैं फ़िदा हो सकूँ. जवाहरलाल नेहरू का व्यक्तित्व और उनका लेखन मुझे बहुत प्रिय है. उनका वैचारिक प्रभाव मैं अनुभव करता हूँ लेकिन उनके राजनेता रूप पर मेरे कुछ सवाल भी हैं. गड़बड़ी संविधान सभा से ही शुरू हुई. आरम्भ में उन्होंने क्रान्तिकारी भाषण दिया और अमेरिकी, फ्रांसीसी और रूसी क्रांतियों की याद दिलाई ,लेकिन उन क्रांतियों के प्रभाव भारतीय संविधान में नहीं ला सके. भूमि मामले को राज्यों के खाते में डाल देने के बाद भूमि संबंधों की आधुनिकता और एकरूपता को लंबित कर दिया गया. ज़मींदारी ख़त्म करने में इसीलिए समय लग गया. कॉमन सिविल कोड पहली ही बैठक में स्वीकृत होना चाहिए था, आज तक नहीं हुआ. आम्बेडकर न होते तो हिन्दुओं के बीच मनु का विधान आज तक चल रहा होता, जैसे मुसलमानों के बीच शरीयत कानून चल रहे हैं. संपत्ति संबंधी मामले भी यथास्थितिवादियों के पाले में चले गए. आर्थिक और सामाजिक संबंधों पर सुस्ती इसलिए भी हुई कि समाजवादी साथी कंस्टीटूएंट असेम्बली से इस्तीफा देकर बाहर आ गए. दिसम्बर 1946 में केवल ग्यारह फीसद लोगों की असेम्बली कहने वाले नेहरू को वयस्क मतदाता सूची के आधार पर नई संविधान सभा का चुनाव कराना चाहिए था. तब शायद ऐसा संविधान नहीं बनता. हालांकि नेहरू ने आम चुनावों के बाद पंचवर्षीय योजनाओं के द्वारा देश को एक गतिशीलता प्रदान की और विषम स्थितियों में देश को लोकतान्त्रिक बनाने की कोशिश की.

दक्षिण भारत के एक नेता कुमारसामी कामराज को मैं कुछ अधिक कारगर मानता हूँ. शिक्षा पर उन्होंने जोर दिया. स्कूलों में छात्रों को दोपहर का भोजन पहली बार उन्होंने शुरू करवाया. पूरे राज्य का बिजलीकरण कर दिया. कुल सात साल तमिलनाडु का मुख्यमंत्री रह कर उन्होंने अपना काम पूरा कर लिया अपने इस्तीफे की पेशकश कर दी कि मुख्यमंत्री के रूप में मेरा काम ख़त्म. केवल छठी जमात तक शिक्षा हासिल किए इस व्यक्ति के पास चन्द्रगुप्त मौर्य जैसा विजन था. मैं कामराज का प्रशंसक हूँ. कुछ वैसा ही प्रशंसा भाव मेरे मन में बिहार के दिवंगत नेता कर्पूरी ठाकुर के लिए है.

......

Dr. Pramod Ranjan
email: pramod@janvikalp.org
Mo: 9811884495